प्रवचन नं. २४४, कलश-११३, गाथा १६४-१६५ दिनाङ्क ०४-०६-१९७९, सोमवार, ज्येष्ठ शुक्ल ९

यह समयसार के (आस्रव अधिकार के) पहले कलश का भावार्थ। पहला कलश कल हो गया है न? **यहाँ नृत्यमंच पर..** नाचने के स्थान में **आस्रव ने प्रवेश किया है।** इस प्रकार लिया है। शुभ-अशुभभाव वे दोनों आस्रव हैं। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग यह सब आस्रव है। आस्रव अर्थात् नये आवरण आते हैं। जैसे जहाज में छिद्र हो, छिद्र, (उसमें से) पानी आवे; इसी प्रकार भगवान आत्मा में मिथ्यात्व और शुभाशुभभाव, ये सब आस्रव हैं। नये आवरण का कारण है। उस आस्रव ने रंगभूमि में प्रवेश किया। नाटक की उपमा दी है न? रंगभूमि में आस्रव अर्थात् पुण्य-पाप के परिणाम ने प्रवेश किया।

नृत्य में अनेक रसों का वर्णन होता है,.. शान्तरस, अद्भुतरस, वीररस आदि (का) वर्णन (होता है)। **यहाँ रसवत् अलंकार के द्वारा शान्त रस में वीर रस को प्रधान करके वर्णन किया है कि 'ज्ञानरूपी धनुर्धर..'** आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप ज्ञायकभाव का ज्ञान, ज्ञायकभाव ध्रुवभाव सदृश नित्य भाव, ऐसा जो आत्मा का स्वरूप है, उसका ज्ञान। शास्त्रज्ञान या बाह्यज्ञान की यहाँ बात नहीं है। जो आत्मा है, आत्मज्ञान (उसकी बात है)।

आत्मा अनन्त शुद्ध गुण का पिण्ड है। आत्मा अनन्त चैतन्यरत्नाकर, चैतन्य के रत्न के सागर, स्वभाव से भरपूर है। उसका ज्ञान। उस आत्मा का ज्ञान कि जो आस्रव का नाश करने की ताकतवाला है। आहाहा! है? ज्ञान (रूपी) धनुर्धर। धनुर्धर क्यों कहा? कि आत्मा, आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, वह कर्म से तो अभावस्वरूप है, पर शरीरादि से तो अभावस्वरूप है परन्तु पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा और काम, क्रोध इन भावों से भी प्रभु आत्मा भिन्न है। आहाहा! ऐसे आत्मा का ज्ञान होने पर... स्व-आत्मज्ञान। आत्मज्ञान का अर्थ ऐसा नहीं है कि किसी निमित्त का ज्ञान, राग का ज्ञान, पर्याय का ज्ञान, ऐसा नहीं है। आत्मज्ञान। आत्मा जो त्रिकाली ध्रुव चिदानन्द प्रभु, भूतार्थ सत्यार्थ (है), उसका ज्ञान, उसका दर्शन और उसमें लीनता। यह ज्ञानरूपी धनुर्धर (अर्थात्) एक के बाद एक ज्ञान की धारा। जिसने शुद्धस्वभाव का आश्रय लिया है, सम्यग्दृष्टि को वह एक के बाद एक ज्ञान की धारा, आनन्द की शुद्ध धारा बढ़ती जाती है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु!

ज्ञानरूपी धनुर्धर.. बाण की आँवली। जैसे एक बाद एक बाण पड़े, वैसे भगवान आत्मा आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु का ज्ञान और अनुभव होने पर, उसका सम्यग्दर्शन होने पर, उसमें से ज्ञान और आत्मा की वीतरागी धारा बहती है, उसे यहाँ ज्ञान बाणावली कहा जाता है। आहाहा! वह **आस्रव को जीतता है।** वह मिथ्यात्व और पुण्य-पाप के भाव, वे आस्रव हैं, उन्हें ज्ञान की धारा—भगवान आत्मा के स्वभाव का ज्ञान और आनन्द की धारा, उस आस्रव को जीतती है। अर्थात्? ज्ञान आत्मा का और आनन्द आत्मा की दशाएँ जैसे उत्पन्न होती है, वैसे-वैसे पुण्य-पाप के परिणाम का व्यय होता है, नाश होता है। आहाहा!

समस्त विश्व को जीतकर मदोन्मत्त हुआ आस्रव.. पूरे जगत को आस्रव ने पागल बनाया है, पागल! आस्रव ही मैं हूँ और उससे मुझे लाभ होगा, (ऐसे) आस्रव ने (पागल बनाया है)। **विश्व को जीतकर मदोन्मत्त हुआ आस्रव..** उसे अभिमान हुआ कि मैंने तो बड़े मानधाताओं को गिराया है। मुनि दिगम्बर द्रव्यलिंगी हुए, उन्हें भी पंच महाव्रत के परिणाम आस्रव हैं, उनसे मुझे लाभ है, ऐसों को भी आस्रव कहता है कि मैंने गिराया है। आहाहा! नौवें ग्रैवेयक गया। आता है न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार... मुनिव्रत धार ग्रैवक उपजायो, पै आतम ज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' मुनिव्रत धार, अट्ठाईस

मूलगुण लिए, पंच महाव्रत लिए परन्तु वह तो आस्रव है। आहाहा! वह दुःख है। वह महाव्रत का भाव भी आस्रव है, वह दुःख है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो' – इसका अर्थ क्या हुआ? कि पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण राग, आस्रव और दुःख है। आत्मा के ज्ञान बिना आनन्द का स्वाद उसे नहीं आता। आहाहा!

यहाँ पर का ज्ञान नहीं, शास्त्र का ज्ञान भी नहीं। प्रभु! सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा का ज्ञान होने पर उसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा! उस अतीन्द्रिय (आनन्द के) स्वाद बिना अनन्त बार मुनिपना पंच महाव्रत धारण किये परन्तु इसे आत्मज्ञान का स्वाद नहीं आया। क्योंकि वे तो आस्रव हैं। उन आस्रव से हमें कल्याण होगा, यह मान्यता मिथ्यात्व की है। आहाहा! उसके कारण 'आत्मज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' जरा सुख नहीं मिला। पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण, राग अनन्त बार पालन किया परन्तु वह तो राग और आस्रव है। आहाहा!

यह **मदोन्मत्त हुआ आस्रव..** मद में पागल हुआ। मैंने किन्हीं को, मानधाता को गिराया है। दिगम्बर जैन साधु अनन्त बार हुआ, नौवें ग्रैवेयक गया, पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण पाले, इसलिए वह मानो कि मेरा कल्याण हो जाएगा। ऐसे आस्रव ने, ऐसे मुनियों को भी आस्रव के प्रेम में मिथ्यात्व में लिया है। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! मार्ग बहुत अलग है। जिनेश्वर वीतराग परमात्मा..!

(ऐसा मदोन्मत्त हुआ) **आस्रव संग्रामभूमि में आकर खड़ा हो गया;..** मैंने बहुतों को तो गिराया है। आस्रव कहता है कि मैंने मेरे झपट्टे में से किसी को हटने नहीं दिया। आहाहा! अन्त में पर की दया का भाव आवे, वह राग है। राग ही मुझे लाभ करेगा, ऐसा जो मिथ्यात्व आस्रव, उसे गर्व हुआ कि मैंने तो ऐसे महात्मा को नीचे गिराया है। आहाहा! ऐसा **आस्रव संग्रामभूमि में आकर खड़ा हो गया; किन्तु ज्ञान तो उससे भी अधिक बलवान..** भगवान आत्मा के स्वभाव में अनन्त-अनन्त वीर्य और अनन्त पुरुषार्थ भरा है।

भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान, अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द, अतीन्द्रिय अनन्त वीर्य—पुरुषार्थ पूर्ण भरा है। आहाहा! ऐसे बल के योद्धा ने, अपने आत्मज्ञान और

श्रद्धा के-योद्धा के बल से। आहाहा! **उससे भी अधिक बलवान..** शास्त्र से भी चैतन्य भगवान का ज्ञान-श्रद्धा और शान्ति होने से वीतरागी सम्यग्दर्शन (अधिक बलवान है), क्योंकि आत्मा जिनस्वरूप ही है। 'घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन, मत मदिरा के पान सौ मतवाला समझे न।' 'घट घट अन्तर जिन बसे,' घट-घट में वीतरागस्वरूप आत्मा जिनस्वरूप अन्दर है। आहाहा! वह 'घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन।' जैनपना अन्दर में होता है। उस जिनपने का आश्रय लेकर जिसने मिथ्यात्व का नाश किया है, उसे अन्तर में-घट में जैन कहा जाता है। बाहर की प्रवृत्ति देखकर जैनपना माने, कोई त्यागी हुआ, ऐसा नहीं कहते हैं। आहाहा!

'घट घट अन्तर जैन बसे' यह जिनस्वरूप भगवान आत्मा, जिसका अनादि वीतरागस्वरूप ही उसका स्वभाव है। उसका आश्रय लेकर, उसके अवलम्बन से जो वीतरागता प्रगट होती है, उस आस्रव से भी वह वीतरागता महा बलवान है। वह **अधिक बलवान योद्धा है..** आहाहा! क्या कहते हैं? मिथ्यात्व और शुभ-अशुभ दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम वे आस्रव हैं। उनके बल से जगत को अनादि (काल से) अनन्त बार चार गति में भटकाया परन्तु उसकी अपेक्षा भगवान आत्मा का बल... आहाहा! अनन्त-अनन्त वीर्य—पुरुषार्थ, अन्दर आत्मा में वीर्य भरा है। वीर्य अर्थात् पुरुषार्थ। वीर्य अर्थात् रेत नहीं। अनन्त वीर्य आत्मा में भरा है। ऐसा उस अनन्त वीर्य का रूप अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन में भी भरा है। अनन्त गुण में अनन्त वीर्य का रूप है। आहाहा! ऐसे अनन्त गुण के रूप में अनन्त का वीर्य, उसके स्वभाव के बल के जोर से, उसके सन्मुख के बल के जोर से आस्रव को जीत लिया है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

इसलिए वह आस्रव को जीत लेता है.. आहाहा! भगवान पूर्णानन्द प्रभु, अनन्त चैतन्यरत्न का सागर, समुद्र, सागर वह है। अनन्त चैतन्य के गुण का प्रभु सागर है। एक-एक आत्मा, आहाहा! उसके जोर के बल से, उसका आश्रय लेकर। आहाहा! शक्ति में जो अनन्त ज्ञान, और दर्शन, आनन्द है, उसे पर्याय में व्यक्त में आनन्द और ज्ञान व्यक्त किया। आहाहा! उस चैतन्य के स्वभाव के आश्रय से प्रगट किया। वह कोई दया, दान और व्रत के विकल्प के आश्रय से प्रगट नहीं होता। क्योंकि वह तो सब आस्रव है। आहाहा!

उसने **अन्तर्मुहूर्त में कर्मों का नाश करके..** आहाहा! यहाँ तो अन्तिम लेना है

न! सम्यग्दर्शन हुआ या पूर्णानन्द प्रभु आत्मा है, उसका अनुभव हुआ। अनुभव अर्थात् उसे अनुसरकर दशा हुई। पूर्ण स्वरूप भगवान आत्मा को अनुसरकर दशा हुई। वह 'अनुभव चिन्तामणि रत्न, अनुभव है रसकूप; अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।' उस अनुभव द्वारा आस्रव को जीतकर, उत्कृष्ट अनुभव द्वारा **कर्मों का नाश करके केवलज्ञान उत्पन्न करता है।** आहाहा!

ये तो पंचम काल के मुनि हैं, इन्हें कहीं केवलज्ञान नहीं परन्तु सामर्थ्य बताते हैं। कुन्दकुन्दाचार्यदेव, अमृतचन्द्राचार्यदेव ये सब पंचम काल के साधु हैं। कुन्दकुन्दाचार्यदेव दो हजार वर्ष पहले हुए। अमृतचन्द्राचार्य टीकाकार हजार वर्ष पहले हुए। वे ऐसी पुकार करते हैं कि आत्मा के स्वभाव के जोर के बल से हमने मिथ्यात्व और अज्ञान और राग-द्वेष का अंश तो मिटाया है, परन्तु उसके पूर्ण के, आत्मा के आश्रय के बल से कर्म का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। आहाहा! है ?

अन्तर्मुहूर्त में कर्मों का नाश करके केवलज्ञान उत्पन्न करता है। ज्ञान का ऐसा सामर्थ्य है। ज्ञान अर्थात् आत्मा। ज्ञान अर्थात् भगवान आत्मा की परिणति जो शुद्ध है, उसे यहाँ ज्ञान कहा गया है। उस शुद्ध परिणति द्वारा अशुद्ध आस्रव को जीतकर केवलज्ञान उत्पन्न करता है। आहाहा!

गाथा–१६४–१६५

तत्रास्रवस्वरूपमभिदधाति –

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य सण्णसण्णा दु।
बहुविहभेया जीवे तस्सेव अणण्ण–परिणामा।।१६४।।

णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति।
तेसिं पि होदि जीवो य राग–दोसादि–भावकरो।।१६५।।

मिथ्यात्व–मविरमणं कषाययोगौ च सञ्ज्ञासञ्ज्ञास्तु।
बहु–विध–भेदा जीवे तस्यैवानन्य–परिणामाः।।१६४।।

ज्ञानावरणाद्यस्य ते तु कर्मणः कारणं भवन्ति।
तेषा–मपि भवति जीवश्च राग–द्वेषादि–भावकरः।।१६५।।

रागद्वेषमोहा आस्रवाः इह हि जीवे स्वपरिणामनिमित्ताः, अजडत्वे सति चिदाभासाः।

मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगाः पुद्गलपरिणामाः ज्ञानावरणादिपुद्गलकर्मास्रवणनिमित्त–त्वात्किलास्रवाः। तेषां तु तदास्रवणनिमित्तत्वनिमित्तं अज्ञानमया आत्मपरिणामा रागद्वेषमोहाः। तत आस्रवणनिमित्तत्वनिमित्तत्वात् रागद्वेषमोहा एवास्रवाः। ते चाज्ञानिन एव भवन्तीति अर्थादेवा–पद्यते।।१६४–१६५।।

अब आस्रव का स्वरूप कहते हैं:–

मिथ्यात्व अविरत अरु कषायें, योग संज्ञ असंज्ञ हैं।
ये विविध भेद जु जीव में, जीव के अनन्य हि भाव हैं।।१६४।।

अरु वे हि ज्ञानावरनआदिक, कर्म के कारण बनैं।
उनका भि कारण जीव बने, जो रागद्वेषादिक करे।।१६५।।

गाथार्थ : [मिथ्यात्वम्] मिथ्यात्व, [अविरमणं] अविरमण, [कषाययोगौ च] कषाय और योग – यह आस्रव [संज्ञासंज्ञाः तु] संज्ञ (चेतन के विकार) भी हैं और असंज्ञ (पुद्गल के विकार) भी हैं। [बहुविधभेदाः] विविध भेदवाले संज्ञ आस्रव– [जीवे] जो कि जीव में उत्पन्न होते हैं वे–[तस्य एव] जीव के ही [अनन्यपरिणामाः] अनन्य परिणाम हैं। [ते तु] और असंज्ञ आस्रव [ज्ञानावरणाद्यस्य कर्मणः] ज्ञानावरणादि कर्म के [कारणं] कारण (निमित्त) [भवंति] होते हैं [च] और [तेषाम् अपि] उनका भी (असंज्ञ आस्रवों के भी कर्मबन्ध का निमित्त होने में) [रागद्वेषादिभावकरः जीवः] रागद्वेषादि भाव करनेवाला जीव [भवति] कारण (निमित्त) होता है।

टीका : इस जीव में राग, द्वेष और मोह – यह आस्रव अपने परिणाम के कारण से होते हैं, इसलिए वे जड़ न होने से चिदाभास हैं (–अर्थात् जिसमें चैतन्य का आभास है ऐसे हैं, चिद्विकार हैं)।

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग – यह पुद्गलपरिणाम, ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्म के आस्रवण के निमित्त होने से, वास्तव में आस्रव हैं; और उनके (मिथ्यात्वादि पुद्गलपरिणामों के) कर्म–आस्रवण के निमित्तत्व के निमित्त राग–द्वेष–मोह हैं– जो कि अज्ञानमय आत्मपरिणाम हैं। इसलिए (मिथ्यात्वादि पुद्गलपरिणामों के) आस्रवणक निमित्तत्व के निमित्तभूत होने से राग–द्वेष–मोह ही आस्रव हैं। और वे तो (–राग–द्वेष –मोह) अज्ञानी के ही होते हैं, यह अर्थ में से ही स्पष्ट ज्ञात होता है। (यद्यपि गाथा में यह स्पष्ट शब्दों में नहीं कहा है, तथापि गाथा के ही अर्थ में से यह आशय निकलता है।)

भावार्थ : ज्ञानावरणादि कर्मों के आस्रवण का (–आगमन का) निमित्तकारण तो मिथ्यात्वादि कर्म के उदयरूप पुद्गल–परिणाम हैं, इसलिए वे वास्तव में आस्रव हैं। और उनके कर्मास्रवण के निमित्तभूत होने का निमित्त जीव के रागद्वेषमोहरूप (अज्ञानमय) परिणाम हैं, इसलिए रागद्वेषमोह ही आस्रव हैं। उन रागद्वेषमोह को चिद्विकार भी कहा जाता है। वे रागद्वेषमोह जीव की अज्ञान–अवस्था में ही होते हैं। मिथ्यात्व सहित ज्ञान ही अज्ञान कहलाता है। इसलिए मिथ्यादृष्टि के अर्थात् अज्ञानी के ही रागद्वेषमोहरूप आस्रव होते हैं।

गाथा - १६४-१६५ पर प्रवचन

अब गाथा १६४-१६५ **आस्रव का स्वरूप**

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य सण्णसण्णा दु।
बहुविहभेया जीवे तस्सेव अणण्ण-परिणामा।।१६४।।
णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति।
तेसिं पि होदि जीवो य राग-दोसादि-भावकरो।।१६५।।

नीचे हरिगीत

मिथ्यात्व अविरत अरु कषायें, योग संज्ञ असंज्ञ हैं।
ये विविध भेद जु जीव में, जीव के अनन्य हि भाव हैं।।१६४।।
अरु वे हि ज्ञानावरनआदिक, कर्म के कारण बनैं।
उनका भि कारण जीव बने, जो रागद्वेषादिक करे।।१६५।।

आहाहा! **टीका : इस जीव में..** पर्याय में जो राग और द्वेष है, वे जीव के परिणाम हैं। आहा! **इस जीव में राग, द्वेष और मोह - यह आस्रव अपने परिणाम के कारण से होते हैं..** यह क्या कहते हैं? कि राग, द्वेष और मोह किसी कर्म के कारण हुए हैं, ऐसा नहीं है। 'कर्म विचारैं कौन भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहै घनघात लोह की संगति पाई।' आहाहा! यह यहाँ कहते हैं कि **इस जीव में..** भगवान आत्मा में, उसकी पर्याय में **राग, द्वेष और मोह - यह आस्रव..** हैं। मिथ्यात्व आस्रव है, उसमें हिंसा, झूठ, चोरी, भोग-वासना आस्रव है, तथा दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा ये भी आस्रव है। आहाहा!

ये **राग, द्वेष और मोह - यह आस्रव अपने परिणाम के कारण से होते हैं..** यह क्या कहना चाहते हैं? कि मोह, राग, द्वेष के परिणाम हुए, वे कोई ऐसा कहे कि कर्म के कारण से हुए हैं (तो) ऐसा नहीं है। अपने परिणाम के कारण से हुए हैं। आहाहा! समझ में आया? संस्कृत टीका है। **'स्वपरिणामनिमित्ता:'** संस्कृत है। **'स्वपरिणामनिमित्ता:'** आहाहा! निमित्त अर्थात् कारण। अपने परिणाम के कारण से हुए हैं। उस कर्म के कारण

से राग, द्वेष और मोह हुए हैं, ऐसा नहीं है। कर्म जड़ दूसरी चीज़ है, भगवान चैतन्य दूसरी चीज़ है। एक चीज़ दूसरी चीज़ को कभी स्पर्श नहीं करती। आहाहा! स्पर्श नहीं करती, छूती नहीं, स्पर्श नहीं करती। कर्म आत्मा को स्पर्श नहीं करते; आत्मा का राग, कर्म को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू!

मुमुक्षु : कर्म ने लगाया टेढ़ा आंक।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बातें लोक की। इसके लिए तो आचार्य महाराज स्वयं कहते हैं।

आस्रव **'स्वपरिणामनिमित्ता:'** अपनी परिणति के कारण से आस्रव हुए हैं, कर्म के कारण नहीं। कर्म जड़ है, अजीव है, और ये परिणाम जीव ने स्वयं किये हैं, ये जीव के परिणाम जीव हैं।

मुमुक्षु : कर्मशास्त्र में तो (ऐसा आता है कि) कर्म के कारण से विकार होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त के कथन हैं।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी करे, (यह) तीन काल-तीन लोक में नहीं है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता न! यह तो तीसरी गाथा में कह गये हैं। समयसार तीसरी गाथा। प्रत्येक द्रव्य अपने गुण-पर्याय को चुम्बन करता है। तीसरी गाथा में आ गया है। प्रत्येक द्रव्य, प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु अपने गुण और पर्याय को चुम्बन करता है, पर को कभी चुम्बन नहीं करता, यह तीसरी गाथा में आ गया है। आहाहा! बहुत अन्तर है। यह (अज्ञानी) तो कहे कर्म कराता है। कर्म का उदय कठोर आया, इसलिए आत्मा को राग-द्वेष करना पड़ता है। वह यहाँ आचार्य इनकार करते हैं।

अपने परिणमन के कारण से राग, द्वेष और मोह हुआ है। है? **इस जीव में..** यह जीव, इसमें **राग, द्वेष और मोह - यह आस्रव..** बन्ध के कारण, मलिनभाव। **अपने परिणाम के कारण से होते हैं..** अपने परिणमन की दशा के कारण होते हैं। अपने परिणमन, पर्याय के कारण होते हैं। पर के कारण नहीं होते। आहाहा! है या नहीं अन्दर? अमृतचन्द्राचार्यदेव टीकाकार हैं, कुन्दकुन्दाचार्यदेव की गाथा है। ये अमृतचन्द्राचार्य हजार वर्ष पहले हुए हैं। कुन्दकुन्दाचार्यदेव के बाद हजार वर्ष और अभी से पहले हजार

वर्ष। कुन्दकुन्दाचार्यदेव को दो हजार वर्ष हुए। उन्होंने ये मूल श्लोक (गाथाएँ) बनायी और उनकी टीका (करनेवाले) अमृतचन्द्राचार्यदेव दिगम्बर सन्त वे ऐसा कहते हैं कि प्रभु! एक बार सुन!

आहा! तेरे आत्मा में राग-द्वेष, दया, दान, काम, क्रोध, मिथ्यात्व, पुण्य-पापभाव होते हैं, वे तेरे परिणमन के कारण से है। आहाहा! कोई नया कर्म स्त्री, कुटुम्ब-परिवार से तो नहीं होता परन्तु कर्म के उदय से भी तुझमें परिणमन हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्योंकि कर्म का उदय जड़ है और यह चैतन्य के अरूपी विकारी परिणाम हैं। आहाहा! कर्म जो है, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय जड़ हैं और ये जो राग-द्वेष-मोह हैं वे... है? आहाहा! **वे जड़..** नहीं हैं। आहाहा! राग-द्वेष और मोह जो आत्मा के परिणाम अज्ञान से किये हुए हैं, वे आस्रव अपने परिणाम के कारण से होते हैं। अपने पलटने के, बदलने के अवस्था के कारण से होते हैं, पर के कारण से नहीं। आहाहा! **इसलिए वे जड़ न होने से..** देखा? वे जड़ नहीं हैं, क्योंकि आत्मा भगवान स्वयं अरूपी चिदानन्द, वही स्वयं भूल में स्वयं परिणाम में भूल खड़ी करता है। यह मिथ्यात्व और राग-द्वेष उसकी भूल, उसके परिणाम स्वयं से हुए हैं, इसलिए वे जीव के हैं। **इसलिए वे जड़ न होने से..** आहाहा!

दूसरी जगह पुद्गल कहते हैं, वह दूसरी बात है। वह आत्मस्वभाव जो अनन्त गुण है, उसमें अनन्त गुण में ऐसा कोई गुण विकार करे, ऐसा गुण है ही नहीं। पर्याय में विकार होता है, तब स्वभाव की दृष्टि करने से, पर्याय में जो विकार होता है, वह पुद्गल के निमित्त से हुआ है, इसलिए पुद्गल कहने में आया है। दूसरी जगह ऐसा कहा है परन्तु इस अपेक्षा से। दूसरी जगह क्या अपेक्षा है, ऐसा जानना चाहिए न! दूसरी जगह ऐसा कहा कि यह पुण्य और पाप के भाव पुद्गल हैं, क्योंकि पुद्गल के निमित्त अध्धर से पर्याय में होते हैं। आत्मा का ऐसा कोई गुण नहीं है। आत्मा में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण हैं, परन्तु उनमें एक भी गुण ऐसा नहीं कि विकार करे। इसलिए उसकी पर्याय में जो विकार होता है, वह स्वभाव की दृष्टि करनेवाले को, स्वभाव की दृष्टि कराने के लिए वह पुद्गल का है, ऐसा कहकर निकाल डालते हैं। आहाहा!

यहाँ तो कोई ऐसा माने कि पुण्य और पाप, राग और द्वेष; जैसा कर्म का उदय आवे,

वैसा जीव को परिणाम होता है। (तो कहते हैं), नहीं। 'कर्म विचारें कौन?' वे तो जड़ हैं, मिट्टी-धूल हैं। जैसी यह धूल है, वैसी बारीक धूल है, धूल। यह स्थूल धूल है, यह धूली.. धूली..! वह सूक्ष्म धूल है, अजीव है, मिट्टी है। उसे कुछ खबर नहीं कि हम कर्म हैं या नहीं, इसकी उसे कहाँ खबर है? आहाहा!

ओहोहो! उपोद्घात में कितना बाँधा! वे आस्रव अपने परिणाम के कारण से होते हैं, कर्म के कारण से नहीं। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पुत्र के कारण से राग-द्वेष होते हैं, (ऐसा) नहीं है। आहाहा! **इसलिए वे जड़ न होने से..** वे राग, द्वेष और मोह जड़ नहीं होने से **चिदाभास हैं..** चिदाभास है। आत्मा (का) प्रगट चिदानन्दस्वरूप नहीं, चिदाभास - चैतन्य का आभास है। (ऐसे) वे परिणाम हैं। आहाहा! है? **(जिसमें चैतन्य का आभास है, ऐसे हैं, चिद्विकार हैं)।** आहाहा! इसमें भी अन्तर। बात-बात में अन्तर है। तत्त्व की खबर नहीं होती। आहाहा! पहले से कहे, कर्म के कारण भटका, कर्म के कारण भटका, कर्म के कारण भटका। परन्तु कर्म तो जड़ है।

मुमुक्षु : कर्म का नाश करने के लिए हम पूजा में धूप डालते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन धूप डाले? धूप के परमाणु भी वहाँ पड़ने (थे), उन्हें आत्मा डाले, यह तीन काल में मिथ्या बात है। आहाहा! उन परमाणुओं की उस समय की अवस्था होने में वे परमाणु कारण हैं; आत्मा कारण नहीं। ऐसे स्वाहा (करे, उसमें) यह हाथ हिलता है, वह आत्मा से नहीं। आहाहा! उसकी-इस जड़ की, शरीर की पर्याय है। वह शरीर के परिणाम हैं, आत्मा के नहीं। आहाहा! और जीव के जो राग, द्वेष, मोह परिणाम हैं, वे जड़ के नहीं हैं, वे कर्म के नहीं। आहाहा! **इसलिए वे जड़ न होने से..** ज्ञानाभास। वास्तविक चैतन्यस्वरूप नहीं, परन्तु चिदाभास है। चैतन्य जैसा आभास (होता है) वैसे परिणाम इसके हैं। **(जिसमें चैतन्य का आभास है, ऐसे हैं, चिद्विकार हैं)।** आहाहा! ढाई लाईन में तो कितना भरा है! दिगम्बर सन्तों की वाणी बहुत गम्भीर! आहाहा! श्वेताम्बर और स्थानकवासी में यह कुछ है ही नहीं। आहाहा! श्वेताम्बर और स्थानकवासी को तो टोडरमलजी ने (मोक्षमार्गप्रकाशक में) पाँचवें अधिकार में अन्यमत में डाला है। वह जैनमत ही नहीं है। आहाहा! यह वस्तु की स्थिति है। आहाहा!

मुमुक्षु : इच्छा न होने तो भी राग हो जाता है, उसका क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : इच्छा नहीं, कौन कहता है ? राग हुआ, यही इच्छा है। राग हुआ, यही इच्छा है। राग के दो प्रकार - माया और लोभ। लोभ राग में आ गया। द्वेष के दो प्रकार —क्रोध और मान। द्वेष के दो प्रकार—क्रोध और मान। राग के दो प्रकार—माया और लोभ। इच्छा आ गयी। राग हुआ, वही इच्छा हुई। आहाहा! बहुत अन्तर है, भाई!

वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ सीमन्धर भगवान महाविदेह में विराजते हैं, वहाँ से यह वाणी आयी है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्यदेव वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह श्लोक बनाये हैं। इनकी टीका अमृतचन्द्राचार्यदेव ने हजार वर्ष बाद (बनायी है)। कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने तीर्थंकर जैसा काम किया और अमृतचन्द्राचार्यदेव ने उनके गणधर जैसा काम किया! आहाहा! ऐसी वस्तु है। इन तीन लाइनों में कितना भरा!!

राग और द्वेष, पुण्य और पाप के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, यह सब कषाय है। यह आस्रव है। वह अपने परिणाम के निमित्त से होता है। आहाहा! **इसलिए वे जड़ न होने से चिदाभास हैं..** आहा! वह आत्मा की ही विकारदशा है। वह जड़ की विकारदशा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले अधिकार में तो उसे अजीवपना कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किस अपेक्षा से कहा है ? अपने शुद्धस्वभाव की दृष्टि कराने को, उस विकार की उत्पत्ति पुद्गल के कारण से हुई, इसलिए उसे अजीव कहा। निमित्त के आधीन होकर हुआ, उन्हें अजीव कहा, परन्तु है तो आत्मा की पर्याय में होता हुआ अपने परिणाम का अपराध है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चय से क्या है ? ऐसा भाई पूछते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निश्चय, निश्चय है। यह अशुद्ध निश्चय है। वह जीव की पर्याय में है। शुद्ध निश्चय की दृष्टि कराने को वे परिणाम पुद्गल के हैं, ऐसा कहकर निकाल डालने के लिए कहा। समझ में आया ? अशुद्ध निश्चय कहो या व्यवहार कहो। आहाहा! यह उसकी पर्याय में होते हैं। उसके परिणाम, परिणमन के कारण से होते हैं। पर के कारण से बिल्कुल नहीं। आहाहा! इसीलिए तो कहा कि **वे जड़ न होने से चिदाभास हैं..** आत्मा की चिदाभास, ज्ञानाभास जैसी उनकी वह दशा है। आहाहा!

अब इसका विस्तार (करते हैं)। **मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग – यह पुद्गलपरिणाम,..** कौन से? ये पूर्व के। ये पूर्व के जो कर्म हैं न, उनकी यहाँ बात है। मिथ्यात्व (अर्थात्) दर्शनमोह, अविरति (अर्थात्) चारित्रमोह। कषाय और योग ये पुद्गल परिणाम जड़ हैं। वे **ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्म के आस्रवण के निमित्त होने से,..** क्या कहते हैं? पूर्व के जो कर्म जड़ हैं, वे पुद्गल के परिणाम हैं। कर्म.. कर्म..। ध्यान रखना, बापू! वह पुद्गल परिणाम है। **ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्म के आस्रवण के निमित्त..** हैं। क्या कहते हैं? पुराने जड़कर्म, वे नये कर्म को आने का निमित्त और आस्रव है। सुनना! पुराने जड़कर्म, मिथ्यात्व-अव्रत-कषाय-योग पुद्गल परिणाम, वे ज्ञानावरणादी पुद्गलकर्म के आस्रव के निमित्त होने से। वास्तव में वह पूर्व के कर्म का उदय है, वह आस्रव है।

अब (कहते हैं) उन्हें **उनके (मिथ्यात्वादि पुद्गलपरिणामों के) कर्म-आस्रवण के निमित्तत्व के निमित्त..** वह पूर्व का जड़ जो है, वह नये आस्रव आने का कारण कहा। परन्तु किसे? कि वे पूर्व के कर्म हैं, उनमें जो राग-द्वेष और मोह जिसमें निमित्त होते हैं, उसके कारण से वह निमित्त नये कर्म का कारण होता है।

फिर से, वास्तव में **(मिथ्यात्वादि पुद्गलपरिणामों के)** अर्थात् जड़ के **कर्म-आस्रवण के निमित्तत्व के..** पुराने जड़कर्म को नये कर्म के आने का निमित्त है, उसे **राग-द्वेष-मोह..** आहाहा! वे **(मिथ्यात्वादि पुद्गलपरिणामों के) कर्म-आस्रवण के निमित्तत्व के निमित्त राग-द्वेष-मोह..** जीव के परिणाम हैं। आहाहा!

फिर से, पुराने कर्म जो जड़ हैं, वे नये कर्म का आस्रव का निमित्त कहा। परन्तु वह निमित्त भी कब होता है? कि जब आत्मा को राग-द्वेष-मोह होता है, राग-द्वेष-मोह करके जब निमित्त के (आधीन) होता है, तब नये कर्म का आस्रव निमित्त को कहने में आता है। अरे रे!

फिर से, भगवान आत्मा में साथ में जो जड़कर्म हैं, मिट्टी-धूल है, उसका जो उदय है, वह नये कर्म को आने का निमित्त है। परन्तु वह निमित्त कब? उस जड़कर्म को आत्मा के राग-द्वेष-मोह निमित्त हो तब। आहाहा! क्या कहा? समझ में आया?

यहाँ तो ऊपर कहा कि राग-द्वेष-मोह, वे जीव के परिणाम हैं, यह सिद्ध करना है।

वे पूर्व के जड़कर्म हैं, वह नये आने का कारण है, परन्तु कब ? कि उस निमित्त को राग-द्वेष और मोह जीव के परिणाम मिले तो। राग-द्वेष और मोह के जीव के परिणाम न मिलें तो वह निमित्त नये कर्म का आस्रव नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? भाई ने जैनसिद्धान्त प्रवेशिका में डाला है।

फिर से, पुराने जड़कर्म, वे नये कर्म के आने का निमित्त—परन्तु कब ? कि पुराने जड़कर्म में जीव के राग-द्वेष-मोह निमित्त हो तो। जीव के राग-द्वेष-मोह निमित्त न हो तो पुराना कर्म, नये का आवरण कारण नहीं होता।

मुमुक्षु : उदय को नहीं लिया गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : उदय, उदय में रह गया।

यहाँ राग-द्वेष और मोह जीव करे तो पुराने कर्म को निमित्त नये आने का कहने में आता है परन्तु जीव राग-द्वेष-मोह न करे तो पुराने कर्म को नया आने का कारण भी नहीं कहा जाता। आहाहा! अरे रे! ऐसी बातें हैं। क्या कहा ?

फिर से, मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग ये पूर्व के पुद्गल के परिणाम हैं। पूर्व के कर्म की बात की। वह ज्ञानावरणी पुद्गलकर्म के आने का निमित्त है। वह पूर्व के कर्म का उदय, नये कर्म के आने में निमित्त है परन्तु **उनके (मिथ्यात्वादि पुद्गलपरिणामों के) कर्म-आस्रवण के निमित्तत्व के निमित्त राग-द्वेष-मोह हैं..** यहाँ अज्ञानी राग-द्वेष-मोह करे तो पुराने कर्म को नये कर्म का निमित्तकारण कहने में आता है। राग-द्वेष न करे तो पुराना कर्म, नये के आने का निमित्त भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है परन्तु प्रभु! क्या हो? मार्ग तो प्रभु का ऐसा है। आहाहा!

पुराने कर्म को नये कर्म का निमित्त कहा, परन्तु कब ? कि उन पुराने कर्म को जीव के राग-द्वेष-मोह निमित्तरूप से आवे तो वह निमित्त नये आने का कारण कहलाता है, परन्तु राग-द्वेष-मोह जीव न करे तो पुराना कर्म, नये (कर्म) आने का कारण नहीं बनता। आहाहा! भाषा तो समझ में आये ऐसी है, परन्तु बापू! मार्ग ऐसा है कोई। आहाहा!

भगवान अपने परिणमन में जब अज्ञानी अपने स्वरूप को न जानकर, राग-द्वेष और मोहरूप से परिणमन करता है, उस परिणमन में कारण आत्मा है। उसमें कर्म

(कारण) नहीं है। अब यहाँ कहते हैं कि पुराना कर्म, नये का कारण कब होता है ? कि पुराने कर्म के निमित्त में यहाँ राग-द्वेष और मोह जीव करे तो उसे नये आने का कारण / निमित्त कहा जाता है, परन्तु राग-द्वेष-मोह जीव न करे तो पुराने कर्म, नये आवरण होने का कारण भी है नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। अटपटी बात जैसा लगता है।

मुमुक्षु : ऐसा होवे तो ही छूटा जा सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ऐसा ही है। यदि कर्म का उदयमात्र (कारण) होवे तो सर्व को उदय है। यह संस्कृत टीका में है - जयसेनाचार्यदेव की टीका में है कि यदि उदय से होता होवे तो उदय तो सबको है, तो कभी बन्धरहित नहीं हो सकेगा। परन्तु उदय में राग-द्वेष-मोह स्वयं करे तो वह नये कर्म के आने का निमित्तकारण होता है, न करे तो छूट जाता है। आहाहा! जयसेनाचार्यदेव की संस्कृत टीका में है। है यहाँ? समयसार। यह प्रवचनसार है ? हिन्दी.. हिन्दी.. (चाहिए)। यह तो नियमसार है, नहीं लगता। प्रवचनसार आया नहीं। क्या कहा ?

फिर से, एक बात तो पहले यह की है कि जितने पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम होते हैं, वे जीव के परिणमन से होते हैं। यह तो समयसार है, समयसार की टीका चाहिए। नहीं। इसमें जयसेनाचार्य की टीका नहीं। यहाँ है, लो न, इतने में ही यह (आ जाता है)। एक सिद्धान्त है कि जीव स्वयं राग-द्वेष-मोहरूप से परिणमन करे तो उस परिणमन का कारण जीव होता है परन्तु वह परिणमे तो कर्म का कारण कहा जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! एक सिद्धान्त तो यह सिद्ध किया।

दूसरा सिद्धान्त कि पूर्व के कर्म का उदय नये को निमित्त होता है। निमित्त होता है न! उपादान तो आवे, वह है। नये कर्म आवे, वह उपादान है और यह तो निमित्त है। परन्तु निमित्त कब होता है ? कि यदि जीव मिथ्यात्व और राग-द्वेष का परिणमन करे तो वह निमित्त नये आने का कारण होता है परन्तु यदि राग-द्वेष-मोह न करे तो वह निमित्त खिर जाता है और नये कर्म नहीं आते। आहाहा! गजब काम! है न इसमें ?

मुमुक्षु : ऐसा ही होता है न! तत्त्व तो जो है, वही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही है, वस्तु यह है। वस्तु की स्थिति ही यह है। भगवान

ने कुछ की नहीं है। भगवान ने तो जैसी है, वैसी जानी है। जानी है, वैसी कही है। भगवान कुछ उसकी स्थिति में करते नहीं हैं। आहाहा! ईश्वरकर्ता है, ऐसा कुछ यह नहीं है। आहाहा! जगत का कर्ता ईश्वर, जैन के विकार का कर्ता जड़कर्म। आहाहा! उससे जड़ बढ़ गया। वे कहें कि सबका कर्ता ईश्वर है। तब यह कहता है कि हमारे विकार का कर्ता जड़कर्म है। आहाहा!

मुमुक्षु : ईश्वर तो कल्पित है और जड़ तो वस्तु है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कर्म वस्तु है। ईश्वर तो कल्पित है, ईश्वर था कब? वस्तु है, उसे कर्ता कौन? है, उसका कर्ता कौन? और नहीं है, उसे कर्ता कौन? आहाहा! अनादि-अनन्त वस्तु स्वतन्त्र है। वह तो यहाँ कहना चाहते हैं? आहाहा!

कर्म का उदय जड़ है, वह नये को निमित्त होता है। परन्तु कब? कि यदि जीव राग-द्वेष-मोह, मिथ्यात्व करे तो। पुण्य परिणाम से धर्म होता है; राग है, वह मेरा स्वरूप है—ऐसा मिथ्यात्व करे और पुण्य-पाप के भाव करे तो वह पुराने कर्म के निमित्त को वह परिणाम निमित्त होता है। इससे नये कर्म आवें, वे इस राग-द्वेष-मोह के कारण से है। वास्तविक तो राग-द्वेष-मोह ही आस्रव है। आहाहा!

मुमुक्षु : कर्म का उदय आवे तो डिग्री टू डिग्री राग होता ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है, वह बात अलग, नहीं होता, ऐसा नहीं है। तब तो फिर उदय से तो इसमें पहले बात की है न! उदय तो सबको है। उदयमात्र से बन्ध होवे तो कभी बन्ध से छूटने का प्रसंग नहीं आयेगा। उदय कब नहीं है? सबको है। यह है, जयसेनाचार्यदेव की टीका में। है न! इसमें भी है, इसके अर्थ में भी है। इसके अर्थ में है। पुस्तक वहाँ रह गयी, परन्तु यहाँ लो न! यहाँ यह क्या पड़ा? गड़बड़-गड़बड़, जगत को गड़बड़ करके मार डाला। कर्म के कारण विकार होता है, कर्म के कारण विकार होता है। तीव्र कर्म का उदय आवे तो आत्मा को मिथ्यात्व होता है और मन्द आवे तो शुभभाव होता है। (ऐसा मानते हैं)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि इस जीव के परिणाम अपने परिणाम का कारण स्वयं है। उसे कर्म कारण है नहीं और यहाँ जो कर्म कारण नये को कहा, वह कब? कि जीव यदि राग-द्वेष

-मोह करे तो। राग-द्वेष-मोह न करे तो पुराने कर्म नये का कारण नहीं होता और दोनों खिर जाते हैं। पुराना कर्म है, वह खिर जाता है, नया तो आता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! प्रभु का मार्ग तो ऐसा है। जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा का यह हुकम है। इसमें आड़ी-टेड़ी गड़बड़ करे (तो) उसकी मान्यता विपरीत होती है। आहाहा!

कर्म-आस्रवण के निमित्तत्व के निमित्त राग-द्वेष-मोह हैं-जो कि अज्ञानमय आत्मपरिणाम हैं। देखा? राग-द्वेष-मोह, वह तो जीव के अज्ञानमय परिणाम हैं। वे कहीं जड़ के परिणाम नहीं हैं। कर्म का उदय है, वह तो जड़ के परिणाम हैं। आहाहा! पुराना कर्म, नये का कारण है, परन्तु कब? कि उसे निमित्तपने का निमित्त राग-द्वेष-मोह होवे तो। **जो कि अज्ञानमय आत्मपरिणाम हैं।** अज्ञानमय (परिणाम) है। ज्ञानी को तो राग-द्वेष-मोह है नहीं। आहाहा! अज्ञानी राग से धर्म माननेवाला, पुण्य से धर्म माननेवाला, ऐसे मिथ्यादृष्टि का अज्ञान, वह अज्ञानपरिणाम उसमें स्वयं में है। वह अज्ञानपरिणाम पुराने कर्म को निमित्त होता है, तब पुराना कर्म, नये को निमित्त होता है। इसमें कुछ बात तो स्पष्ट होती है। इसमें कुछ गड़बड़ चले, ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा!

यह बात तो हमारे (संवत्) १९७१ से चलती है। १९७१ के वर्ष! कितने वर्ष हुए? ६४! ६४ वर्ष पहले, १९७१ में बात बाहर प्रसिद्ध की थी। १९७१ का चातुर्मास, चौंसठ वर्ष पहले। लाठी चातुर्मास में थे। आत्मा में जो कुछ मिथ्यात्व और राग-द्वेष होता है, वह कर्म के कारण नहीं। १९७१ में बात बाहर प्रसिद्ध की थी। संवत् १९७१। चौंसठ वर्ष पहले। ढूँढ़िया में दीक्षा ली थी! स्थानकवासी। उसमें भी यह सत्य बात है नहीं। आहाहा! विकार जीव में होता है, वह कर्म के कारण नहीं। (इतना कहा वहाँ) ऐ... शुरुआत हो गयी। भड़के.. भड़के.. लोग!

(संवत्) १९७१ के वर्ष, चौंसठ वर्ष पहले। श्वेताम्बर का भगवतीसूत्र है। सोलह हजार श्लोक हैं और एक लाख (श्लोकप्रमाण) की टीका है। वह सत्रह बार पढ़ा था। यह बात उसमें नहीं मिलती परन्तु इतनी बात उसमें से निकाली थी कि विकार होता है, वह कर्म के कारण नहीं। विकार करे तो आत्मा को कर्म निमित्त कहने में आते हैं। बाकी कर्म का उदय हुआ, इसलिए यहाँ विकार करना पड़ता है, यह बात अत्यन्त मिथ्या है। दूसरे के परिणाम के कारण अपने परिणाम होते हैं (यह बात) एकदम मिथ्या है।

दूसरी बात, अपने प्रवचनसार में आ गया है कि अपने परिणाम को द्रव्य स्वयं पहुँचता है। फिर मिथ्यात्व का हो या राग-द्वेष के हों या निर्मल (परिणाम हों)। सम्यग्दर्शन के परिणाम को भी आत्मा प्राप्त करता है। मिथ्यात्व के परिणाम को भी आत्मा प्राप्त करता है। वह उसे पहुँचता है। एक गाथा आ गयी है। दूसरी गाथा कि पर्याय द्रव्य-गुण से होती है। ९३ वीं गाथा, प्रवचनसार ज्ञेय अधिकार की पहली गाथा है।

द्रव्य-गुण को द्रव्य और गुण से पर्याय होती है, पर से नहीं, तो विकारी-अविकारी पर्याय भी अपने द्रव्य-गुण से होती है, पर से नहीं। आहाहा! ऐसा ही ज्ञेय का स्वरूप है। ज्ञेय अधिकार है। प्रवचनसार का ज्ञेय अधिकार है। ९२ गाथा (तक) ज्ञान अधिकार है, ९३ से २०० (गाथा तक) ज्ञेय अधिकार है, पश्चात् ७५ (गाथाओं में) चरणानुयोग का अधिकार है। यह तो सब बहुत बार देखा है।

यहाँ कहते हैं कि पर्याय, द्रव्य में होती है, वह उसके द्रव्य-गुण के कारण (होती है)। चाहे तो विकारी हो या अविकारी (हो)। आहाहा! यह अपने दोपहर में आ गया कि द्रव्य से होती है, पर से नहीं। आहाहा! प्रत्येक द्रव्य के परिणाम - पर्याय - वर्तमान दशा जड़ की या चैतन्य की, वह पर्याय उसके द्रव्य-गुण के कारण होती है, पर के कारण नहीं और प्रत्येक पर्याय को उसका द्रव्य पहुँचता है। प्रत्येक पर्याय को उसका द्रव्य प्राप्त करता है, पाता है। यह पहली गाथा में आ गया है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

इसलिए **(मिथ्यात्वादि पुद्गलपरिणामों के)..** पुराने **आस्रवणक निमित्तत्व के निमित्तभूत होने से राग-द्वेष-मोह ही आस्रव हैं।** आहाहा! अब ऐसी एकदम स्पष्ट बात है (तो भी विवाद करते हैं)। पुराने कर्म नये आने का निमित्त है, कब कि वह निमित्त को-जड़ के उदय को यहाँ जीव राग-द्वेष-मोह करे तो। आहाहा! वे जीव के अज्ञान परिणाम हैं, राग-द्वेष-मोह वे अज्ञान परिणाम हैं। आहाहा! साथ में मोह है न! मिथ्यात्वपरिणाम और राग-द्वेष परिणाम, वे जीव के परिणाम हैं। आहाहा!

इसलिए (मिथ्यात्वादि पुद्गलपरिणामों के).. पुराने **आस्रवणक निमित्तत्व के निमित्तभूत होने से राग-द्वेष-मोह ही आस्रव हैं।** आहाहा! **और वे तो (-रागद्वेषमोह) अज्ञानी के ही होते हैं..** ज्ञानी को आत्मा का ज्ञान होने से उसे मोह, मिथ्यात्व नहीं होता

और मिथ्यात्व से सम्बन्धित जो राग-द्वेष हैं, वे ज्ञानी को नहीं होते। ज्ञानी को अस्थिरता के राग-द्वेष होते हैं, चारित्रदोष (होता है) परन्तु मिथ्यात्व से सम्बन्धित जो अनन्तानुबन्धी के राग-द्वेष और मिथ्यात्व, वे ज्ञानी को नहीं होते। वे तो अज्ञानी को होते हैं। आहाहा!

जिसे आत्मा चिदानन्द प्रभु की खबर नहीं। सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा निर्मलानन्द अनन्त गुण का पिण्ड है, ऐसा जिसने अन्दर में आदर नहीं किया और जिसे राग-द्वेष के, पुण्य, दया-दान के परिणाम का आदर किया है, उस मिथ्यादृष्टि को मिथ्यात्व और राग -द्वेष और अज्ञान होता है। आहाहा! गोविन्दरामजी! इसमें कहाँ ढाँककर (बात करते हैं)? यहाँ तो ढ़िंढ़ोरा पीटकर बात चलती है। यहाँ कुछ गुप्त बात नहीं है। बाईस लाख पुस्तकें यहाँ की प्रकाशित हो गयी हैं। सबमें यह कथन है। आहाहा!

वे राग-द्वेष-मोह तो **अज्ञानी के ही..** आहाहा! पुराने कर्म में निमित्तपना अज्ञानी के राग-द्वेष-मोह होते हैं। वे राग-द्वेष-मोह अज्ञानी को होते हैं। आहाहा! मोह शामिल डाला है न, मिथ्यात्व! **यह अर्थ में से ही स्पष्ट ज्ञात होता है।** यह टीका है, टीका में है, हों! **'निमित्तत्वात् रागद्वेषमोहा एवास्रवाः। ते चाज्ञानिन एव भवन्तीति अर्थादेवापद्यते।'** ऐसा अर्थ इसमें से निकलता है। अमृतचन्द्राचार्यदेव की संस्कृत टीका है। आहाहा!

(यद्यपि गाथा में यह स्पष्ट शब्दों में नहीं कहा है तथापि गाथा के ही अर्थ में से यह आशय निकलता है।) क्या आशय? कि पुराने कर्म को अज्ञानी के राग-द्वेष-मोह परिणाम स्वयं किये हुए परिणाम का कारण स्वयं, अज्ञानी को वे परिणाम पुराने कर्म को निमित्त हों, तब पुराना कर्म, नये (कर्म) आने को निमित्त होता है। आहाहा! पुराने कर्म को, ज्ञानी को राग-द्वेष-मोह नहीं है... आहाहा! जिसे आत्मा आनन्द, ज्ञाता-दृष्टा है, ऐसा भान समकित में हुआ, उसे यह मिथ्यात्व सम्बन्धी के राग-द्वेष-मोह नहीं तो पुराने कर्म को निमित्त भी नहीं होता, तो पुराने कर्म, नये को (निमित्त नहीं होते तो) उसे आवरण भी नहीं आता। आहाहा! (ऐसा) गाथा के अर्थ में से निकलता है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)